



## भारत में लैंगिक समानता और न्याय: नारीवादी विमर्श एवं समावेशी दृष्टिकोण

सोनु कुमार  
(शोधार्थी) राजनीति विज्ञान विभाग,  
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण), बिहार। ईमेल: sonu.ashmit@gmail.com  
मोबाइल नं.: 9852000019

### सार (Abstract)

लैंगिक समानता और न्याय आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की मूलभूत शर्तें हैं। भारतीय संविधान समानता, स्वतंत्रता और न्याय के आदर्शों को स्वीकार करता है, किंतु व्यावहारिक स्तर पर लैंगिक असमानता आज भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में गहराई से विद्यमान है। यह शोध भारत में लैंगिक समानता और न्याय की स्थिति का विश्लेषण नारीवादी विमर्श तथा समावेशी दृष्टिकोण के आलोक में करता है।

नारीवादी चिंतन ने लैंगिक असमानता को केवल जैविक भिन्नता का परिणाम न मानकर सामाजिक, सांस्कृतिक और पितृसत्तात्मक संरचनाओं की उपज के रूप में समझाया है। इस अध्ययन में उदारवादी, समाजवादी और दलित नारीवाद सहित विभिन्न नारीवादी दृष्टिकोणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि लैंगिक न्याय केवल महिलाओं के अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें ट्रांसजेंडर, हाशिए पर स्थित वर्गों और विविध लैंगिक पहचानों का समावेश भी आवश्यक है।

शोध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यद्यपि भारत में शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और कानूनी संरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, फिर भी लैंगिक हिंसा, वेतन असमानता, देखभाल श्रम की उपेक्षा और सामाजिक रूढ़ियाँ समानता के मार्ग में प्रमुख बाधाएँ बनी हुई हैं। समावेशी दृष्टिकोण इस तथ्य पर बल देता है कि लैंगिक न्याय तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक नीतियाँ और संस्थाएँ सभी लैंगिक पहचानों और सामाजिक समूहों को समान अवसर प्रदान न करें।

अंततः यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि भारत में वास्तविक लैंगिक समानता और न्याय की स्थापना के लिए संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ नारीवादी चेतना, सामाजिक संवेदनशीलता और समावेशी नीतिगत हस्तक्षेप अनिवार्य हैं। यह अध्ययन समकालीन भारत में लैंगिक न्याय की बहस को एक व्यापक और बहुआयामी दृष्टिकोण प्रदान करता है।

**मूल शब्द (Keywords):** लैंगिक समानता, लैंगिक न्याय, नारीवाद, जेंडर स्टडीज, समावेशन, पितृसत्ता, महिला अधिकार, सामाजिक न्याय।

### 1. प्रस्तावना

लैंगिक समानता और न्याय आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की आधारभूत शर्तें हैं, जो न केवल सामाजिक न्याय की अवधारणा को सुदृढ़ करती हैं, बल्कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता और समावेशी विकास के सिद्धांतों को भी अभिव्यक्त करती हैं। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने नागरिकों को किस हद तक समान अवसर, स्वतंत्रता और गरिमा प्रदान करती है। इस दृष्टि से भारत जैसे बहुलतावादी समाज में



लैंगिक समानता का प्रश्न विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यहाँ सामाजिक संरचना ऐतिहासिक रूप से जाति, वर्ग, धर्म और लिंग के आधार पर निर्मित रही है।

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता एक ऐतिहासिक और संरचनात्मक समस्या के रूप में विद्यमान रही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को इस प्रकार आकार दिया है कि महिलाओं और अन्य लैंगिक समूहों को द्वितीयक स्थिति में रखा गया है। यह असमानता केवल सार्वजनिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि निजी क्षेत्र—विशेषकर परिवार—में भी गहराई से अंतर्निहित है। परिणामस्वरूप, महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, संपत्ति, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी के अवसरों में भेदभाव का सामना करना पड़ता है।<sup>1</sup>

भारतीय संविधान ने इस ऐतिहासिक असमानता को ध्यान में रखते हुए समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों को अपने मूल ढांचे में समाहित किया है। अनुच्छेद 14, 15 और 16 समानता और भेदभाव-निषेध की गारंटी प्रदान करते हैं, जबकि अनुच्छेद 21 गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार को सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त, राज्य के नीति-निर्देशक तत्व और मौलिक कर्तव्य भी लैंगिक न्याय को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। तथापि, संवैधानिक प्रावधानों और वास्तविक सामाजिक स्थिति के बीच एक स्पष्ट अंतर बना हुआ है, जो इस बात की ओर संकेत करता है कि केवल कानूनी उपाय पर्याप्त नहीं हैं।<sup>2</sup>

लैंगिक असमानता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इसे केवल कानूनी या नीतिगत समस्या के रूप में न देखें, बल्कि इसे एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक परिघटना के रूप में समझें। इसी संदर्भ में नारीवादी विमर्श एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक उपकरण के रूप में उभरता है। नारीवादी दृष्टिकोण यह प्रतिपादित करता है कि लैंगिक असमानता जैविक अंतर का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक निर्माण (social construction) है, जिसे पितृसत्ता, सांस्कृतिक मान्यताओं और शक्ति-संबंधों के माध्यम से बनाए रखा जाता है।<sup>3</sup>

नारीवादी चिंतन ने पारंपरिक ज्ञान और सत्ता संरचनाओं को चुनौती देते हुए यह प्रश्न उठाया है कि समाज में 'सामान्य' या 'स्वाभाविक' माने जाने वाले लैंगिक संबंध वास्तव में किस प्रकार निर्मित होते हैं। इसने यह भी स्पष्ट किया है कि महिलाओं की अधीनता केवल एक सामाजिक तथ्य नहीं, बल्कि एक राजनीतिक और वैचारिक प्रक्रिया का परिणाम है। उदारवादी, समाजवादी, मार्क्सवादी और उत्तर-आधुनिक नारीवादी दृष्टिकोणों ने लैंगिक असमानता के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है और इसके समाधान के लिए विविध मार्ग प्रस्तुत किए हैं।<sup>4</sup>

समकालीन नारीवादी विमर्श ने 'अंतर-संबंधता' (intersectionality) की अवधारणा को भी प्रमुखता दी है, जो यह दर्शाती कि लैंगिक असमानता को केवल लिंग के आधार पर नहीं समझा जा सकता। जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और लैंगिक पहचान जैसे अन्य कारक भी इसके साथ अंतर्संबंधित होते हैं और असमानता के अनुभव को जटिल बनाते हैं। उदाहरण के लिए, एक दलित महिला या एक आदिवासी महिला का अनुभव एक सवर्ण शहरी महिला से भिन्न होता है। इस प्रकार, लैंगिक न्याय की कोई भी अवधारणा तब तक पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक वह इन विविधताओं को समाहित न करे।<sup>5</sup>

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभावों ने लैंगिक संबंधों में नए आयाम जोड़े हैं। एक ओर, शिक्षा, रोजगार और सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार ने महिलाओं के लिए नए अवसर प्रदान किए हैं, वहीं दूसरी ओर, असंगठित क्षेत्र में बढ़ती भागीदारी, अस्थायी रोजगार और डिजिटल असमानता जैसी नई चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि हम लैंगिक समानता को एक गतिशील और परिवर्तनीय अवधारणा के रूप में समझें, जो समय और संदर्भ के अनुसार विकसित होती रहती है।<sup>6</sup>



समकालीन समय में लैंगिक न्याय की अवधारणा का विस्तार केवल महिलाओं तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि इसमें ट्रांसजेंडर, गैर-द्विआधारी (non-binary) और अन्य लैंगिक अल्पसंख्यक समूहों को भी शामिल किया गया है। यह परिवर्तन इस बात को रेखांकित करता है कि लैंगिकता एक स्थिर या द्विआधारी श्रेणी नहीं है, बल्कि एक स्पेक्ट्रम है, जिसमें विविध पहचान और अनुभव शामिल हैं। भारत में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों को मान्यता देने वाले कानून इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, किंतु सामाजिक स्वीकृति और व्यावहारिक कार्यान्वयन अभी भी चुनौतीपूर्ण बने हुए हैं।<sup>17</sup>

इस शोध-पत्र का उद्देश्य भारत में लैंगिक समानता और न्याय की स्थिति का विश्लेषण करना है, जिसमें नारीवादी विमर्श और समावेशी दृष्टिकोण को सैद्धांतिक आधार के रूप में उपयोग किया गया है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार विभिन्न नारीवादी दृष्टिकोण लैंगिक असमानता की प्रकृति को स्पष्ट करते हैं और किस प्रकार समावेशी नीतियां तथा सामाजिक परिवर्तन इस असमानता को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

यह शोध न केवल लैंगिक असमानता के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि संवैधानिक प्रावधानों, नीतिगत हस्तक्षेपों और सामाजिक चेतना के माध्यम से लैंगिक न्याय की दिशा में किस प्रकार प्रगति की जा सकती है। साथ ही, यह अध्ययन समकालीन भारत में लैंगिक न्याय के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है और एक अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए संभावित समाधान प्रस्तुत करता है।

यह कहा जा सकता है कि लैंगिक समानता केवल एक सामाजिक या कानूनी लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक और लोकतांत्रिक अनिवार्यता है। जब तक समाज के सभी वर्गों को समान अवसर, सम्मान और गरिमा प्राप्त नहीं होगी, तब तक वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है। इसलिए, लैंगिक न्याय की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ सामाजिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन लाया जाए और एक समावेशी, संवेदनशील तथा न्यायपूर्ण समाज की दिशा में निरंतर प्रयास किये जाएं।

## 2. सैद्धांतिक रूपरेखा: नारीवादी विमर्श

नारीवादी विमर्श (Feminist Discourse) लैंगिक असमानता को समझने और उसके समाधान की दिशा में एक सशक्त सैद्धांतिक ढांचा प्रदान करता है। यह केवल महिलाओं की स्थिति के अध्ययन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं, सत्ता-संबंधों, ज्ञान-उत्पादन और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं की आलोचनात्मक समीक्षा भी करता है। नारीवाद यह मान्यता देता है कि लैंगिक असमानता कोई प्राकृतिक या जैविक सत्य नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित और संरक्षित की गई व्यवस्था है।

नारीवादी चिंतन का विकास समय के साथ विभिन्न चरणों में हुआ है, जिन्हें सामान्यतः 'लहरों' (waves) के रूप में समझा जाता है। प्रारंभिक चरण में इसका ध्यान महिलाओं के कानूनी और राजनीतिक अधिकारों पर केंद्रित था, जबकि बाद के चरणों में इसने सामाजिक संरचनाओं, पहचान, यौनिकता और अंतर-संबंधता जैसे जटिल प्रश्नों को अपने विश्लेषण का हिस्सा बनाया।<sup>18</sup>

इस खंड में विभिन्न प्रमुख नारीवादी दृष्टिकोणों—उदारवादी, समाजवादी, दलित, अंतर-संबंधात्मक और समकालीन विमर्श का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो लैंगिक असमानता की प्रकृति को बहुआयामी ढंग से समझने में सहायक हैं।



### 2.1 उदारवादी नारीवाद (Liberal Feminism)

उदारवादी नारीवाद नारीवादी चिंतन की सबसे पुरानी और प्रभावशाली धाराओं में से एक है। इसका मूल आधार उदारवादी राजनीतिक दर्शन में निहित है, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों पर बल देता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, महिलाओं की अधीनता का मुख्य कारण उन्हें शिक्षा, रोजगार, संपत्ति और राजनीतिक अधिकारों से वंचित किया जाना है। इसलिए, उदारवादी नारीवाद का प्रमुख उद्देश्य कानूनी और संस्थागत सुधारों के माध्यम से महिलाओं को पुरुषों के समान अवसर प्रदान करना है।

उदारवादी नारीवादियों का मानना है कि यदि महिलाओं को समान शिक्षा और अवसर प्राप्त हों, तो वे समाज के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान योगदान दे सकती हैं। इस दृष्टिकोण ने महिलाओं के मताधिकार, समान वेतन और कार्यस्थल पर समान अवसर जैसे मुद्दों को प्रमुखता दी। इस दृष्टिकोण की आलोचना यह कहकर की जाती है कि यह संरचनात्मक असमानताओं को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करता और मुख्यतः मध्यमवर्गीय महिलाओं के अनुभवों पर केंद्रित रहता है।<sup>9</sup>

### 2.2 समाजवादी नारीवाद (Socialist Feminism)

समाजवादी नारीवाद, मार्क्सवादी और नारीवादी सिद्धांतों का समन्वय है, जो यह तर्क प्रस्तुत करता है कि महिलाओं की असमानता केवल पितृसत्ता का परिणाम नहीं है, बल्कि यह पूंजीवादी आर्थिक संरचना से भी जुड़ी हुई है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, महिलाओं का शोषण दोहरे स्तर पर होता है—एक ओर वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था में घरेलू कार्यों के माध्यम से शोषित होती हैं, और दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था में सस्ते श्रम के रूप में उनका उपयोग किया जाता है।

समाजवादी नारीवादियों ने 'देखभाल अर्थव्यवस्था' (care economy) और 'अदृश्य श्रम' (invisible labour) की अवधारणाओं को सामने लाकर यह दिखाया है कि घरेलू कार्यों का आर्थिक मूल्यांकन नहीं किया जाता, जबकि यह समाज और अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह दृष्टिकोण यह भी तर्क देता है कि केवल कानूनी समानता पर्याप्त नहीं है; इसके लिए आर्थिक संरचनाओं में भी परिवर्तन आवश्यक है।<sup>10</sup>

### 2.3 दलित नारीवाद (Dalit Feminism)

भारतीय संदर्भ में दलित नारीवाद एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक हस्तक्षेप के रूप में उभरा है, जिसने मुख्यधारा के नारीवादी विमर्श की सीमाओं को उजागर किया है। दलित नारीवाद यह तर्क देता है कि सभी महिलाओं के अनुभव समान नहीं होते, क्योंकि जाति, वर्ग और सामाजिक स्थिति उनके जीवन को गहराई से प्रभावित करते हैं। एक दलित महिला का अनुभव एक उच्चवर्गीय या सवर्ण महिला से भिन्न होता है, क्योंकि वह जातिगत भेदभाव और लैंगिक असमानता दोनों का सामना करती है।

यह दृष्टिकोण 'द्वि-उत्पीड़न' (double-oppression) की अवधारणा को प्रस्तुत करता है, जिसमें महिलाएँ जाति और लिंग दोनों आधारों पर शोषण का सामना करती हैं। दलित नारीवाद ने यह भी रेखांकित किया है कि मुख्यधारा का नारीवादी आंदोलन अक्सर सवर्ण महिलाओं के अनुभवों तक सीमित रहा है और उसने हाशिए के समुदायों की महिलाओं की आवाज को पर्याप्त स्थान नहीं दिया।<sup>11</sup>

### 2.4 अंतर-संबंधता (Intersectionality)



अंतर-संबंधता (**Intersectionality**) की अवधारणा यह समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है कि लैंगिक असमानता किस प्रकार विभिन्न सामाजिक कारकों के साथ मिलकर जटिल रूप धारण करती है। यह अवधारणा यह बताती है कि व्यक्ति की पहचान केवल एक आयाम—जैसे लिंग—तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र, यौनिकता और अन्य कारकों के साथ मिलकर निर्मित होती है।

उदाहरण के लिए, एक मुस्लिम महिला, एक दलित महिला या एक आदिवासी महिला के अनुभव एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इस प्रकार, नीतियों और कार्यक्रमों को इन विविधताओं को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाना चाहिए। अंतर-संबंधता का दृष्टिकोण यह भी स्पष्ट करता है कि असमानता के विभिन्न रूप एक-दूसरे को सुदृढ़ करते हैं, जिससे सामाजिक न्याय की प्रक्रिया और अधिक जटिल हो जाती है।<sup>12</sup>

### 2.5 समकालीन नारीवादी विमर्श

**समकालीन नारीवादी विमर्श** ने पारंपरिक द्वि-आधारी लैंगिक अवधारणाओं को चुनौती देते हुए लैंगिकता को एक स्पेक्ट्रम (Spectrum) के रूप में समझने पर बल दिया है। यह दृष्टिकोण यह मानता है कि 'पुरुष' और 'महिला' जैसी श्रेणियाँ स्थिर नहीं हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से निर्मित हैं। इसने LGBTQ समुदाय, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों और गैर-द्वि-आधारी पहचानों को नारीवादी विमर्श का हिस्सा बनाया है।

इसके अतिरिक्त, **उत्तर-आधुनिक** और **उत्तर-औपनिवेशिक** नारीवादी दृष्टिकोणों ने यह प्रश्न उठाया है कि ज्ञान और सत्ता के वैश्विक ढाँचे किस प्रकार लैंगिक असमानता को प्रभावित करते हैं। समकालीन विमर्श डिजिटल युग में उत्पन्न नई चुनौतियों जैसे साइबर हिंसा, डिजिटल लैंगिक अंतर और ऑनलाइन उत्पीड़न को भी अपने विश्लेषण में शामिल करता है।<sup>13</sup>

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि नारीवादी विमर्श एक **बहुआयामी और गतिशील सैद्धांतिक ढाँचा** है, जो लैंगिक असमानता को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने में सहायक है। जहाँ **उदारवादी नारीवाद** समान अधिकारों और अवसरों पर बल देता है, वहीं **समाजवादी नारीवाद** आर्थिक संरचनाओं की भूमिका को उजागर करता है। **दलित नारीवाद और अंतर्संबंधता (Intersectionality)** यह स्पष्ट करते हैं कि असमानता को एकरूप में नहीं समझा जा सकता, जबकि समकालीन विमर्श लैंगिकता की विविधता और जटिलता को रेखांकित करता है।

इस प्रकार, लैंगिक न्याय की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि इन सभी दृष्टिकोणों को समेकित रूप में अपनाया जाए और एक समावेशी तथा न्यायपूर्ण समाज की दिशा में प्रयास किए जाएँ।

### 3- भारत में लैंगिक समानता की संवैधानिक आधारशिला

भारतीय संविधान न केवल एक कानूनी दस्तावेज़ है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त उपकरण भी है, जिसका उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना है जहाँ समानता, न्याय और स्वतंत्रता के आदर्श वास्तविक रूप में साकार हो सकें। लैंगिक समानता के संदर्भ में संविधान की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह ऐतिहासिक रूप से विद्यमान लैंगिक असमानताओं को समाप्त करने और महिलाओं तथा अन्य लैंगिक समूहों को समान अधिकार प्रदान करने का आधार प्रस्तुत करता है।

भारत में लैंगिक समानता की संवैधानिक आधारशिला को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम संविधान के विभिन्न प्रावधानों—मौलिक अधिकारों, नीति-निर्देशक तत्वों, न्यायिक व्याख्याओं और विधिक व्यवस्थाओं—का समग्र विश्लेषण करें। यह खंड इन सभी आयामों को विस्तार से प्रस्तुत करता है।

#### 3.1 मौलिक अधिकार और समानता का सिद्धांत



भारतीय संविधान के भाग III में निहित मौलिक अधिकार लैंगिक समानता के मूल आधार हैं। अनुच्छेद 14, 15 और 16 इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। अनुच्छेद 14 सभी व्यक्तियों को विधि के समक्ष समानता और विधि के समान संरक्षण की गारंटी देता है। यह सिद्धांत न केवल औपचारिक समानता (formal equality) को स्थापित करता है, बल्कि यह राज्य को यह भी निर्देश देता है कि वह समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करे।

अनुच्छेद 15(1) राज्य को धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर भेदभाव करने से रोकता है। साथ ही, अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है, जो 'सकारात्मक भेदभाव' (affirmative action) की अवधारणा को वैधता प्रदान करता है।<sup>14</sup>

अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार के अवसरों में समानता सुनिश्चित करता है। यह महिलाओं के लिए रोजगार के क्षेत्र में समान अवसरों की गारंटी देता है और भेदभाव को निषिद्ध करता है। इन प्रावधानों का समग्र प्रभाव यह है कि संविधान केवल समानता की घोषणा ही नहीं करता, बल्कि उसे लागू करने के लिए एक ठोस विधिक ढाँचा भी प्रदान करता है।

### 3.2 गरिमा, स्वतंत्रता और जीवन का अधिकार

लैंगिक समानता के संदर्भ में अनुच्छेद 21 का विशेष महत्व है, जो प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। भारतीय न्यायपालिका ने इस अनुच्छेद की व्यापक व्याख्या करते हुए इसे केवल जीवित रहने के अधिकार तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसमें गरिमापूर्ण जीवन, निजता (privacy), शारीरिक स्वायत्तता और यौन स्वतंत्रता जैसे अधिकारों को भी शामिल किया है।<sup>15</sup>

महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों के लिए यह अनुच्छेद विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उन्हें अपने शरीर, पहचान और जीवन के निर्णयों पर नियंत्रण प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, न्यायालयों ने यह स्पष्ट किया है कि यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव व्यक्ति की गरिमा का उल्लंघन हैं, जो अनुच्छेद 21 के अंतर्गत संरक्षित हैं। इस प्रकार, अनुच्छेद 21 लैंगिक न्याय को केवल कानूनी अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि मानव गरिमा के एक अभिन्न अंग के रूप में स्थापित करता है।

### 3.3 नीति-निर्देशक तत्व और सामाजिक-आर्थिक न्याय

संविधान के भाग IV में निहित नीति-निर्देशक तत्व (Directive Principles of State Policy) राज्य को एक न्यायपूर्ण और समावेशी समाज की स्थापना के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 39(a) सभी नागरिकों के लिए आजीविका के पर्याप्त साधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने पर बल देता है, जबकि अनुच्छेद 39(d) समान कार्य के लिए समान वेतन (equal pay for equal work) का सिद्धांत स्थापित करता है।<sup>16</sup>

अनुच्छेद 42 राज्य को यह निर्देश देता है कि वह मानवीय कार्य परिस्थितियों और मातृत्व राहत (maternity relief) की व्यवस्था सुनिश्चित करे। यद्यपि नीति-निर्देशक तत्व न्यायालय में प्रवर्तनीय (justiciable) नहीं हैं, फिर भी उन्होंने न्यायपालिका और विधायिका को नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण दिशा प्रदान की है। इन प्रावधानों ने महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण और कार्यस्थल पर अधिकारों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

### 3.4 न्यायपालिका की भूमिका: प्रगतिशील व्याख्या

भारतीय न्यायपालिका ने लैंगिक समानता के संवर्धन में एक सक्रिय और प्रगतिशील भूमिका निभाई है। न्यायालयों ने संविधान के प्रावधानों की व्यापक और उदार व्याख्या करते



हुए लैंगिक न्याय को सुदृढ़ किया है। विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) एक ऐतिहासिक निर्णय है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध दिशानिर्देश (**Vishaka Guidelines**) जारी किए।<sup>17</sup> यह निर्णय इस बात का उदाहरण है कि न्यायपालिका किस प्रकार विधायी शून्यता को भरते हुए महिलाओं के अधिकारों की रक्षा कर सकती है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने कई अन्य मामलों में भी लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया है, जैसे—

- कार्यस्थल पर सुरक्षा
- समान वेतन
- प्रजनन अधिकार
- LGBTQ+ अधिकारों की मान्यता

न्यायपालिका की यह भूमिका इस बात को दर्शाती है कि संवैधानिक प्रावधानों का प्रभाव केवल उनके पाठ तक सीमित नहीं है, बल्कि उनकी व्याख्या और कार्यान्वयन पर भी निर्भर करता है।

### 3.5 विधिक प्रावधान और नीतिगत पहल

संविधान के अतिरिक्त, विभिन्न विधिक प्रावधानों और नीतियों ने लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (Protection of Women from Domestic Violence Act)** महिलाओं को घरेलू हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता है और उन्हें कानूनी सहायता उपलब्ध कराता है।<sup>18</sup>

कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतिरोष) अधिनियम, 2013 (**POSH Act**) कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करता है और संस्थानों को शिकायत निवारण तंत्र स्थापित करने के लिए बाध्य करता है। ट्रांसजेंडर व्यक्तियों (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 लैंगिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों को मान्यता देता है और उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है।<sup>19</sup>

इन विधिक प्रावधानों का उद्देश्य केवल भेदभाव को रोकना नहीं है, बल्कि एक ऐसा वातावरण तैयार करना है जहाँ सभी व्यक्तियों को समान अवसर और सम्मान प्राप्त हो। उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारत में लैंगिक समानता की संवैधानिक आधारशिला अत्यंत सुदृढ़ और व्यापक है। संविधान ने न केवल समानता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों को स्थापित किया है, बल्कि उन्हें लागू करने के लिए विभिन्न संस्थागत और विधिक तंत्र भी प्रदान किए हैं।

मौलिक अधिकार, नीति-निर्देशक तत्व, न्यायपालिका की प्रगतिशील भूमिका और विधिक प्रावधान मिलकर एक ऐसा ढाँचा तैयार करते हैं, जो लैंगिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देता है। तथापि, यह भी स्पष्ट है कि संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद व्यावहारिक स्तर पर लैंगिक असमानता बनी हुई है। इसका मुख्य कारण सामाजिक मानसिकता, सांस्कृतिक रूढ़ियाँ और कार्यान्वयन की कमजोरियाँ हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि संवैधानिक प्रावधानों को केवल औपचारिक दस्तावेज़ के रूप में न देखा जाए, बल्कि उन्हें सामाजिक परिवर्तन के एक सक्रिय उपकरण के रूप में उपयोग किया जाए।

### 4- लैंगिक असमानता के आयाम

लैंगिक असमानता एक बहुआयामी और संरचनात्मक समस्या है, जो केवल एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के लगभग सभी क्षेत्रों—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य तथा डिजिटल—में विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। यह असमानता ऐतिहासिक रूप से



निर्मित पितृसत्तात्मक संरचनाओं, सांस्कृतिक मान्यताओं और संस्थागत व्यवस्थाओं द्वारा बनाए रखी जाती है। इस खंड में लैंगिक असमानता के विभिन्न आयामों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

#### 4.1 सामाजिक आयाम

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता का सबसे गहरा प्रभाव सामाजिक संरचना में दिखाई देता है। **पितृसत्ता (patriarchy)** एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें पुरुषों को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शक्ति का केंद्र माना जाता है, जबकि महिलाओं को अधीनस्थ भूमिका में रखा जाता है। यह व्यवस्था परिवार, विवाह, धर्म और परंपराओं के माध्यम से पुनरुत्पादित होती रहती है।

बाल विवाह, दहेज प्रथा और लैंगिक रूढ़ियाँ इस असमानता को और अधिक गहरा करती हैं। बाल विवाह लड़कियों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तथा उन्हें प्रारंभिक अवस्था में ही घरेलू जिम्मेदारियों में बाँध देता है। दहेज प्रथा महिलाओं को एक आर्थिक बोझ के रूप में प्रस्तुत करती है, जिसके परिणामस्वरूप कन्या भ्रूण हत्या और लिंगानुपात में असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

इसके अतिरिक्त, समाज में प्रचलित लैंगिक रूढ़ियाँ—जैसे कि पुरुषों को कमाने वाला और महिलाओं को घरेलू कार्यों के लिए जिम्मेदार मानना—महिलाओं की स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय की क्षमता को सीमित करती हैं। ये रूढ़ियाँ शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी को प्रभावित करती हैं।

सामाजिक आयाम का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू लैंगिक हिंसा है, जिसमें घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, मानव तस्करी और ऑनर किलिंग जैसी घटनाएँ शामिल हैं। ये सभी घटनाएँ न केवल महिलाओं की सुरक्षा को प्रभावित करती हैं, बल्कि उनके आत्मसम्मान और सामाजिक स्थिति को भी कमजोर करती हैं।

#### 4.2 आर्थिक आयाम

लैंगिक असमानता का आर्थिक आयाम महिलाओं की आर्थिक स्थिति और उनके संसाधनों तक पहुँच से संबंधित है। भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है और जो महिलाएँ कार्यरत हैं, वे अक्सर असंगठित क्षेत्र में कार्य करती हैं, जहाँ उन्हें न्यूनतम वेतन, सामाजिक सुरक्षा और कार्यस्थल पर सुरक्षा का अभाव होता है।

'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत संविधान और नीतियों में मौजूद होने के बावजूद, व्यवहार में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन प्राप्त होता है। यह **वेतन अंतर (gender wage gap)** लैंगिक असमानता का एक प्रमुख संकेतक है।

इसके अतिरिक्त, महिलाओं के कार्य का एक बड़ा हिस्सा '**अदृश्य श्रम (invisible labour)**' के रूप में होता है, जैसे घरेलू कार्य और **देखभाल कार्य (care work)**, जिसका कोई आर्थिक मूल्यांकन नहीं किया जाता। यह स्थिति महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में बाधा उत्पन्न करती है और उन्हें आर्थिक रूप से निर्भर बनाए रखती है।

संपत्ति और संसाधनों पर अधिकार की कमी भी आर्थिक असमानता का एक महत्वपूर्ण कारण है। यद्यपि कानून महिलाओं को संपत्ति के अधिकार प्रदान करते हैं, फिर भी सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से महिलाएँ इन अधिकारों का पूर्ण लाभ नहीं उठा पाती हैं।



इस प्रकार, आर्थिक असमानता न केवल महिलाओं की वर्तमान स्थिति को प्रभावित करती है, बल्कि उनके भविष्य के अवसरों को भी सीमित करती है।

#### 4.3 राजनीतिक आयाम

राजनीतिक क्षेत्र में लैंगिक असमानता महिलाओं की सीमित भागीदारी और प्रतिनिधित्व के रूप में दिखाई देती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में समान भागीदारी एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, किंतु व्यवहार में महिलाओं की राजनीतिक उपस्थिति अपेक्षाकृत कम है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण ने स्थानीय स्तर पर उनकी भागीदारी को बढ़ाया है, फिर भी राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर उनकी संख्या सीमित बनी हुई है। इसके पीछे सामाजिक बाधाएँ, संसाधनों की कमी, राजनीतिक दलों में अवसरों का अभाव और पितृसत्तात्मक मानसिकता जैसे कारक जिम्मेदार हैं।

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी केवल प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में उनकी सक्रिय भूमिका भी शामिल है। जब महिलाएँ नीति-निर्माण में भाग लेती हैं, तो वे शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक हिंसा और सामाजिक कल्याण जैसे मुद्दों को अधिक प्राथमिकता देती हैं।

इस प्रकार, राजनीतिक असमानता न केवल लोकतंत्र की गुणवत्ता को प्रभावित करती है, बल्कि समाज में लैंगिक न्याय की प्रक्रिया को भी धीमा कर देती है।

#### 4.4 शिक्षा और स्वास्थ्य

शिक्षा और स्वास्थ्य लैंगिक समानता के दो महत्वपूर्ण संकेतक हैं। शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के बावजूद, लड़कियों की शिक्षा में कई बाधाएँ अभी भी मौजूद हैं, जैसे—गरीबी, सामाजिक रूढ़ियाँ, बाल विवाह और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ।

शिक्षा की कमी महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करती है, क्योंकि यह उनके रोजगार के अवसरों और निर्णय लेने की क्षमता को सीमित करती है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी लैंगिक असमानता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। महिलाओं को पोषण, स्वास्थ्य सेवाओं और चिकित्सा सुविधाओं तक समान पहुँच नहीं मिलती। मातृ मृत्यु दर, कुपोषण और प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएँ इस असमानता के प्रमुख संकेतक हैं।

इसके अतिरिक्त, मानसिक स्वास्थ्य और प्रजनन अधिकारों के मुद्दे भी महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें अक्सर नजरअंदाज किया जाता है।

इस प्रकार, शिक्षा और स्वास्थ्य में असमानता महिलाओं के समग्र विकास को बाधित करती है और उन्हें सामाजिक रूप से कमजोर बनाती है।

#### 4.5 डिजिटल आयाम

डिजिटल युग में लैंगिक असमानता ने एक नया रूप धारण कर लिया है, जिसे 'डिजिटल लैंगिक अंतर' (digital gender gap) कहा जाता है। यह अंतर महिलाओं और पुरुषों के बीच डिजिटल तकनीकों तक पहुँच और उपयोग के स्तर में अंतर को दर्शाता है।



ग्रामीण क्षेत्रों और निम्न आय वर्गों में यह अंतर और अधिक स्पष्ट होता है, जहाँ महिलाओं को मोबाइल फोन, इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं तक सीमित पहुँच होती है। इसके अतिरिक्त, साइबर हिंसा जैसे ऑनलाइन उत्पीड़न, ट्रोलिंग, साइबर स्टॉकिंग और निजी जानकारी का दुरुपयोग महिलाओं की डिजिटल भागीदारी को प्रभावित करती है। डिजिटल असमानता न केवल सूचना और अवसरों तक पहुँच को सीमित करती है, बल्कि यह महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण में भी बाधा उत्पन्न करती है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि लैंगिक असमानता एक बहुआयामी समस्या है, जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों में गहराई से व्याप्त है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य और डिजिटल आयाम एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और मिलकर असमानता की एक जटिल संरचना का निर्माण करते हैं। इसलिए, लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि इन सभी आयामों को समग्र रूप से समझा जाए और नीतियों तथा कार्यक्रमों को बहुआयामी दृष्टिकोण के आधार पर तैयार किया जाए।

## 5- समावेशी दृष्टिकोण और लैंगिक न्याय

समकालीन सामाजिक और राजनीतिक विमर्श में 'समावेशी दृष्टिकोण' (**inclusive approach**) लैंगिक न्याय की प्राप्ति के लिए एक अनिवार्य आधार के रूप में उभरा है। यह दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित है कि समाज में समानता केवल औपचारिक अधिकारों के माध्यम से सुनिश्चित नहीं की जा सकती, बल्कि इसके लिए यह आवश्यक है कि सभी सामाजिक समूहों विशेषकर हाशिए पर स्थित समुदायों को वास्तविक अवसर, संसाधनों तक पहुँच और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी प्राप्त हो। इस संदर्भ में लैंगिक न्याय को एक व्यापक और बहुआयामी अवधारणा के रूप में समझना आवश्यक है, जो केवल महिलाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें दलित, आदिवासी, ट्रांसजेंडर और अन्य लैंगिक अल्पसंख्यक समूहों को भी शामिल किया जाता है।

समावेशी दृष्टिकोण का सैद्धांतिक आधार 'अंतर्संबंधता' (**intersectionality**) की अवधारणा में निहित है, जो यह प्रतिपादित करती है कि व्यक्ति की पहचान बहुआयामी होती है और विभिन्न सामाजिक कारक—जैसे जाति, वर्ग, लिंग, धर्म और क्षेत्र—एक-दूसरे के साथ अंतर्संबंधित होते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, असमानता को केवल एक आयाम में समझना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि विभिन्न प्रकार के भेदभाव एक-दूसरे को सुदृढ़ करते हैं और व्यक्ति के अनुभव को जटिल बनाते हैं। उदाहरण के लिए, एक दलित महिला को न केवल लैंगिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है, बल्कि वह जातिगत उत्पीड़न का भी अनुभव करती है, जिससे उसकी स्थिति और अधिक कमजोर हो जाती है।<sup>20</sup>

समावेशी दृष्टिकोण यह भी रेखांकित करता है कि नीतियों और कार्यक्रमों को इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि वे सभी वर्गों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखें। पारंपरिक नीतिगत ढाँचे अक्सर 'एकरूपता' (**uniformity**) पर आधारित होते हैं, जो यह मान लेते हैं कि सभी व्यक्तियों की आवश्यकताएँ समान हैं। किंतु वास्तविकता में सामाजिक विविधता के कारण विभिन्न समूहों की आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं। इसलिए, एक समावेशी नीति-निर्माण प्रक्रिया में 'एक आकार सभी पर फिट' (one-size-fits-all) दृष्टिकोण के स्थान पर 'विविधता-आधारित' (**diversity-sensitive**) दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।

भारत के संदर्भ में समावेशी दृष्टिकोण का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि यहाँ सामाजिक संरचना अत्यंत जटिल और बहुस्तरीय है। दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक समुदायों और लैंगिक अल्पसंख्यकों को ऐतिहासिक रूप से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक



बहिष्कार का सामना करना पड़ा है। ऐसे में, केवल औपचारिक समानता प्रदान करना पर्याप्त नहीं है; इसके लिए विशेष उपायों और **सकारात्मक भेदभाव (affirmative action)** की आवश्यकता होती है, जो इन समुदायों को वास्तविक समानता प्रदान कर सके।<sup>21</sup>

लैंगिक न्याय के संदर्भ में ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदाय का समावेश समकालीन विमर्श का एक महत्वपूर्ण पहलू है। लंबे समय तक ये समुदाय सामाजिक और कानूनी मान्यता से वंचित रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्रों में गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। हाल के वर्षों में कानूनी और नीतिगत स्तर पर कुछ सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं, जैसे ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों को मान्यता देने वाले कानून, किंतु सामाजिक स्वीकृति और व्यावहारिक कार्यान्वयन अभी भी एक चुनौती बना हुआ है।

समावेशी दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पहलू '**सशक्तिकरण (empowerment)**' है, जो केवल अधिकार प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्तियों को उन अधिकारों का उपयोग करने की क्षमता भी प्रदान करता है। इसके लिए शिक्षा, जागरूकता, आर्थिक अवसर और सामाजिक समर्थन तंत्र का सुदृढ़ होना आवश्यक है। विशेष रूप से महिलाओं और हाशिए के समूहों के लिए शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रम अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये उन्हें आत्मनिर्भर बनने और सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में सक्रिय भागीदारी करने में सक्षम बनाते हैं।<sup>22</sup>

इसके अतिरिक्त, समावेशी दृष्टिकोण में '**भागीदारी (participation)**' का भी विशेष महत्व है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह आवश्यक है कि सभी वर्गों को निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिले। जब महिलाएँ और अन्य हाशिए के समूह नीति-निर्माण में शामिल होते हैं, तो वे अपने अनुभवों और आवश्यकताओं के आधार पर अधिक न्यायसंगत और प्रभावी नीतियों के निर्माण में योगदान दे सकते हैं।

डिजिटल युग में समावेशी दृष्टिकोण का एक नया आयाम '**डिजिटल समावेशन (digital inclusion)**' है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी तक समान पहुँच सुनिश्चित करना आज के समय में अत्यंत आवश्यक हो गया है, क्योंकि यह शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सहभागिता के नए अवसर प्रदान करता है। यदि डिजिटल संसाधनों तक पहुँच में असमानता बनी रहती है, तो यह लैंगिक और सामाजिक असमानता को और अधिक बढ़ा सकती है। इसलिए, डिजिटल साक्षरता और तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता को बढ़ावा देना समावेशी विकास के लिए अनिवार्य है।<sup>23</sup>

समावेशी दृष्टिकोण को लागू करने में कई चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। इनमें सामाजिक रूढ़ियाँ, संस्थागत कमजोरियाँ, संसाधनों की कमी और नीति-निर्माण में संवेदनशीलता का अभाव प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, कई बार नीतियाँ कागज़ पर तो समावेशी दिखाई देती हैं, किंतु उनके कार्यान्वयन में असमानता बनी रहती है। इसलिए, यह आवश्यक है कि समावेशी नीतियों के साथ-साथ उनके प्रभावी क्रियान्वयन पर भी ध्यान दिया जाए।

यह कहा जा सकता है कि समावेशी दृष्टिकोण लैंगिक न्याय की प्राप्ति के लिए एक समग्र और प्रभावी मार्ग प्रदान करता है। यह न केवल असमानता के विभिन्न आयामों को समझने में सहायक है, बल्कि यह एक ऐसे समाज की स्थापना की दिशा में भी मार्गदर्शन करता है, जहाँ सभी व्यक्तियों को समान अवसर, सम्मान और गरिमा प्राप्त हो। इस प्रकार, लैंगिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि नीतियाँ और संस्थाएँ समावेशी, संवेदनशील और बहुआयामी दृष्टिकोण पर आधारित हों।



## 6- चुनौतियाँ (Challenges)

भारत में लैंगिक समानता और न्याय की दिशा में उल्लेखनीय संवैधानिक, विधिक और नीतिगत प्रगति के बावजूद, वास्तविकता में अनेक संरचनात्मक और व्यावहारिक चुनौतियाँ बनी हुई हैं। ये चुनौतियाँ केवल संस्थागत या कानूनी स्तर तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक मानसिकता, सांस्कृतिक संरचनाओं और ऐतिहासिक असमानताओं में गहराई से निहित हैं।

सबसे प्रमुख चुनौती 'पितृसत्तात्मक मानसिकता' (patriarchal mindset) है, जो भारतीय समाज की संरचना में गहराई से अंतर्निहित है। पितृसत्ता केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक वैचारिक ढाँचा भी है, जो पुरुषों को श्रेष्ठ और महिलाओं को अधीनस्थ मानता है। यह मानसिकता परिवार, शिक्षा, धर्म और मीडिया के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होती रहती है। परिणामस्वरूप, महिलाओं की स्वतंत्रता, निर्णय-निर्माण की क्षमता और सामाजिक भूमिका को सीमित किया जाता है।

यह पितृसत्तात्मक सोच केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि शहरी और शिक्षित समाज में भी विभिन्न रूपों में विद्यमान है। उदाहरण के लिए, कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, 'ग्लास सीलिंग' (glass ceiling), और नेतृत्व पदों पर महिलाओं की कम उपस्थिति इसी मानसिकता के परिणाम हैं।<sup>24</sup>

दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती 'कानून और व्यवहार में अंतर' (gap between law and practice) है। भारत में महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए अनेक कानून मौजूद हैं, किंतु उनके प्रभावी क्रियान्वयन में कमी दिखाई देती है। घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न और दहेज जैसी समस्याओं के विरुद्ध सख्त कानून होने के बावजूद, इन अपराधों की घटनाएँ लगातार सामने आती हैं। इसका कारण कानून के प्रति जागरूकता की कमी, न्यायिक प्रक्रिया में देरी, और सामाजिक दबाव जैसे कारक हैं।

तीसरी चुनौती शिक्षा और जागरूकता की कमी है। शिक्षा केवल ज्ञान का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक दृष्टिकोण को भी प्रभावित करती है। लैंगिक संवेदनशील शिक्षा के अभाव में पारंपरिक रूढ़ियाँ और पूर्वाग्रह बने रहते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण और वंचित समुदायों में लड़कियों की शिक्षा में बाधाएँ—जैसे गरीबी, बाल विवाह और सामाजिक असुरक्षा—अब भी व्यापक रूप से विद्यमान हैं।<sup>25</sup>

इसके अतिरिक्त, संस्थागत कमजोरियाँ भी लैंगिक समानता की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती हैं। कई बार सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएँ लैंगिक मुद्दों के प्रति पर्याप्त संवेदनशील नहीं होतीं। नीतियों के कार्यान्वयन में समन्वय की कमी, संसाधनों का अभाव और निगरानी तंत्र की कमजोरी के कारण अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

डिजिटल युग में एक नई चुनौती साइबर हिंसा और डिजिटल असमानता के रूप में उभरी है। महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों को ऑनलाइन उत्पीड़न, ट्रोलिंग और डेटा दुरुपयोग का सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी डिजिटल भागीदारी प्रभावित होती है।<sup>26</sup>

इन सभी चुनौतियों का समग्र प्रभाव यह है कि लैंगिक समानता की प्रक्रिया धीमी और जटिल हो जाती है, जिससे संवैधानिक आदर्शों और सामाजिक वास्तविकता के बीच अंतर बना रहता है।

## 7- नीतिगत सुझाव (Policy Recommendations)



लैंगिक समानता और न्याय को सुनिश्चित करने के लिए केवल समस्याओं की पहचान पर्याप्त नहीं है; इसके लिए ठोस और बहुआयामी नीतिगत हस्तक्षेपों की आवश्यकता होती है। सबसे महत्वपूर्ण कदम **लैंगिक संवेदनशील शिक्षा (gender-sensitive education)** को बढ़ावा देना है। शिक्षा प्रणाली में ऐसे पाठ्यक्रम और दृष्टिकोण शामिल किए जाने चाहिए, जो लैंगिक समानता, सम्मान और संवेदनशीलता को प्रोत्साहित करें। विद्यालय स्तर से ही छात्रों को यह सिखाया जाना चाहिए कि लैंगिक भूमिकाएँ सामाजिक निर्माण हैं और उनमें परिवर्तन संभव है।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू आर्थिक सशक्तिकरण है। महिलाओं को रोजगार के अवसरों, समान वेतन, कौशल विकास और वित्तीय संसाधनों तक पहुँच प्रदान करना आवश्यक है। **स्वयं सहायता समूह (SHGs)**, माइक्रोफाइनेंस और उद्यमिता कार्यक्रम महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में सहायक हो सकते हैं।<sup>27</sup>

तीसरा, कानूनी जागरूकता और न्याय तक पहुँच को सुदृढ़ करना आवश्यक है। महिलाओं और अन्य लैंगिक समूहों को उनके अधिकारों के बारे में जानकारी होना आवश्यक है, ताकि वे अपने अधिकारों का उपयोग कर सकें। इसके लिए कानूनी सहायता केंद्रों, हेल्पलाइन और जागरूकता अभियानों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

चौथा, राजनीतिक भागीदारी बढ़ाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। महिलाओं के लिए आरक्षण, नेतृत्व प्रशिक्षण और राजनीतिक दलों में अवसरों की उपलब्धता उनकी भागीदारी को बढ़ा सकती है। जब महिलाएँ निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में शामिल होती हैं, तो नीतियाँ अधिक समावेशी और संवेदनशील बनती हैं।<sup>28</sup>

पाँचवाँ, डिजिटल सुरक्षा और समावेशन को बढ़ावा देना आवश्यक है। महिलाओं को डिजिटल साक्षरता प्रदान करना, साइबर अपराधों के विरुद्ध सख्त कानून लागू करना और सुरक्षित ऑनलाइन वातावरण सुनिश्चित करना समकालीन समय की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए संस्थागत ढाँचे को मजबूत करना, निगरानी तंत्र को सुदृढ़ करना और विभिन्न हितधारकों के बीच समन्वय स्थापित करना भी आवश्यक है।

## 8- निष्कर्ष (Conclusion)

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारत में लैंगिक समानता और न्याय की प्राप्ति एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें संवैधानिक प्रावधानों, नीतिगत हस्तक्षेपों और सामाजिक परिवर्तन की महत्वपूर्ण भूमिका है। यद्यपि भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों को स्थापित करते हुए लैंगिक समानता की एक सुदृढ़ आधारशिला प्रदान की है, किंतु व्यावहारिक स्तर पर इन आदर्शों की पूर्ण प्राप्ति अभी भी एक चुनौती बनी हुई है। पितृसत्तात्मक मानसिकता, सामाजिक रूढ़ियाँ, आर्थिक असमानता और संस्थागत कमजोरियाँ इस प्रक्रिया में प्रमुख बाधाएँ हैं।

नारीवादी विमर्श ने इन असमानताओं को समझने और उनके समाधान की दिशा में महत्वपूर्ण सैद्धांतिक आधार प्रदान किया है। विशेष रूप से अंतर्संबंधता और समावेशी दृष्टिकोण ने यह स्पष्ट किया है कि लैंगिक न्याय केवल महिलाओं के अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक न्याय की अवधारणा है, जिसमें सभी लैंगिक और सामाजिक समूहों का समावेश आवश्यक है।<sup>29</sup>

समावेशी दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करता है कि नीतियाँ और संस्थाएँ समाज के सभी वर्गों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखें और उन्हें समान अवसर प्रदान करें। यह दृष्टिकोण न केवल असमानता को कम करने में सहायक है, बल्कि यह एक अधिक न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज की स्थापना की दिशा में भी मार्गदर्शन करता है।



यह कहा जा सकता है कि लैंगिक समानता और न्याय केवल संवैधानिक प्रावधानों से संभव नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि समाज में जागरूकता, संवेदनशीलता और समानता के प्रति प्रतिबद्धता विकसित की जाए। इस संदर्भ में, शिक्षा, आर्थिक सशक्तिकरण, कानूनी जागरूकता और राजनीतिक भागीदारी जैसे उपाय अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। साथ ही, डिजिटल युग की नई चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए समावेशी और सुरक्षित वातावरण का निर्माण करना भी आवश्यक है।

इस प्रकार, नारीवादी विमर्श और समावेशी दृष्टिकोण मिलकर एक ऐसे समाज की स्थापना में सहायक हो सकते हैं, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह किसी भी लिंग, जाति, वर्ग या पहचान से संबंधित हो—को समान अवसर, सम्मान और गरिमा प्राप्त हो। यही एक सच्चे लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण समाज की पहचान है।

### संदर्भ सूची

1. Agarwal, B. (2010). *Gender and green governance: The political economy of women's presence within and beyond community forestry*. Oxford University Press.
2. Baxi, U. (2002). *The future of human rights*. Oxford University Press.
3. Beauvoir, S. de. (2011). *The second sex* (C. Borde & S. Malovany-Chevallier, Trans.). Vintage Books. (Original work published 1949)
4. Collins, P. H. (2000). *Black feminist thought: Knowledge, consciousness, and the politics of empowerment* (2nd ed.). Routledge.
5. Crenshaw, K. (1991). Mapping the margins: Intersectionality, identity politics, and violence against women of color. *Stanford Law Review*, 43(6), 1241–1299. <https://doi.org/10.2307/1229039>
6. Federici, S. (2004). *Caliban and the witch: Women, the body and primitive accumulation*. Autonomedia.
7. Friedan, B. (1963). *The feminine mystique*. W. W. Norton & Company.
8. Galanter, M. (1984). *Competing equalities: Law and the backward classes in India*. Oxford University Press.
9. Government of India. (1950). *The Constitution of India*. Ministry of Law and Justice. (Articles 14–21, 15, and 39(d)).
10. Government of India. (2005). *The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005*. Ministry of Law and Justice.
11. Government of India. (2019). *The Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019*. Ministry of Law and Justice.
12. Guru, G. (1995). Dalit women talk differently. *Economic and Political Weekly*, 30(41/42), 2548–2550.



13. Jaggar, A. M. (1983). *Feminist politics and human nature*. Rowman & Allanheld.
14. Kabeer, N. (1999). Resources, agency, achievements: Reflections on the measurement of women's empowerment. *Development and Change*, 30(3), 435–464. <https://doi.org/10.1111/1467-7660.00125>
15. Menon, N. (2012). *Seeing like a feminist*. Zubaan.
16. Sen, A. (1999). *Development as freedom*. Oxford University Press.
17. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO). (2015). *Education for all global monitoring report*. UNESCO Publishing.
18. UN Women. (2015). *Gender equality in the digital age*. UN Women.
19. UN Women. (2020). *Online and ICT-facilitated violence against women and girls*. UN Women.
20. International Telecommunication Union (ITU). (2017). *Measuring the information society report*. ITU Publications.
21. World Economic Forum. (2023). *Global gender gap report*. World Economic Forum.
22. Vishaka v. State of Rajasthan, (1997) 6 SCC 241 (Supreme Court of India).
23. Wollstonecraft, M. (1995). *A vindication of the rights of woman*. Dover Publications. (Original work published 1792)